सामान्य एवं समस्यामूलक बालकों के बीच कक्षा समायोजन

डॉ० धनजी पाठक
मनोविज्ञान विभाग
इण्टर कॉलेज डुमराँव (बक्सर)

शोध सार :–

समायोजन का अर्थ सामंजस्य, व्यवस्थापन या अनुकूलन है। किसी भी परिस्थिति को सुव्यवस्थित या अच्छे ढ़ंग से अनुकूल बनाने की प्रक्रिया को समायोजन कहा जाता है जिससे कि व्यक्ति की आवश्यकताएँ पूरी हो जायें, उन्हें मानसिक तनाव एवं द्वन्द का शिकार न होना पड़े। समायोजन सामान्य एवं संतुलित व्यक्तित्व का परिचायक है। समायोजन में व्यक्तिगत भिन्नता पायी जाती है। मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को समायोजन क्षमता के रुप में माना है। सामान्य बालक की विशेषता सम्पन्नता के क्षेत्र में उनकी श्रेष्ठता से है। समस्या बालक पद का प्रयोग ऐसे बालकों के लिए किया जाता है जिनके व्यवहार या व्यक्त्वि में किसी प्रकार की गम्भीर असामान्यता होती है। जिन बालकों की बौद्धिक योग्यता औसत बालकों से बहुत अधिक या बहुत कम होती है वे प्रायः समस्या–बालक बन जाते हैं। औसत बालकों के लिए जो पाठ्यक्रम बनाया जाता है वह प्रखर बुद्धि के बालकों के लिए बहुत आसान होता है। अतः वे शीघ्र ही सीख जाते हैं। फिर वे स्कूल जाने या कक्षा मे बैठने की आवश्यकता नहीं महसूस करते हैं। परिणाम यह होता है कि स्कूल से अनुपस्थित रहना, वर्ग से भागना, विद्रोह करना, दिवास्वप्न आदि लक्षणों के शिकार होकर समस्या बालकों की जन्मजात संवेगात्मक प्रवृत्तियाँ हैं। सामान्य एवं समस्यामूलक बालकों के समायोजन के सम्बन्ध में जो अनुसंधान हुए हैं उनके आधार पर शिक्षा–शास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे बालकों की कक्षा समायोजन के निम्नलिखित उपायों का वर्णन किया है। ऐसे बालकों की शिक्षा की व्यवस्था उनकी बौद्धिक क्षमता के अनुकूल होनी चाहिए। इस सन्दर्भ में दो प्रकार के बालक आते हैं– सामान्य बालक तथा मन्द बुद्धि के बालक। इन दोनों श्रेणियों के बालकों की शिक्षा एवं अभियोजन की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

शब्द सूचक :– *कुंठाग्रस्त, सर्वांगींण, झक्खीपन, अनुसंधान, बुद्धि–लब्धि।*

प्रस्तावना :– प्रत्येक व्यक्ति को सफल जीवन व्यतीत करने के लिए अपने वातावरण और परिस्थितियों के साथ समायोजन स्थापित करना आवश्यक हो जाता है। व्यक्ति के जीवन में कई प्रकार की अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियाँ आती रहती हैं, जिनका उसे सामना करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमतानुसार समायोजन करने का प्रयत्न करते हैं। कुछ लोग प्रतिकूल परिस्थितियों से सामना करने में सफल रहते हैं तथा कुछ लोग हार मानकर अपना मानसिक संतुलन खो देते हैं, जिसके चलते उनमें मानसिक द्वन्द एवं तनाव देखने को मिलता है। स्वस्थ समायोजन किसी भी वातावरण में शारीरिक एवं मानसिक रुप से स्वस्थ व्यक्ति ही कर सकता है। समायोजन का अर्थ सामंजस्य, व्यवस्थापन या अनुकूलन है। किसी भी परिस्थिति को सुव्यवस्थित या अच्छे ढ़ंग से अनुकूल बनाने की प्रक्रिया को समायोजन कहा जाता है, जिससे कि व्यक्ति की आवश्यकताएँ पूरी हो जायें, उन्हें मानसिक तनाव एवं द्वन्द का शिकार न होना पड़े।

साधारणतया समायोजन की प्रक्रिया व्यक्ति के जीवन–काल में निरन्तर चलती रहती है। समायोजन शब्द के दो अर्थ है। एक अर्थ से निरन्तर चलने वाली एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति स्वयं और पर्यावरण के बीच अधिक सामंजस्यपूर्ण संबंध रखने के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन कर देता है। दूसरे अर्थ में समायोजन एक संतुलित दषा है, जिसमें पहुँचने पर हम उस व्यक्ति को सुसमायोजित कहते हैं। इस प्रकार समायोजित व्यक्ति अपने वातावरण तथा उसमें वर्त्तमान परिस्थिति की जानकारी करके उसपर नियंत्रण रखकर आचरण करने वाला होता है। वह स्वयं तथा वातावरण के बीच संतुलन बनाये रखता है।

इस प्रकार यदि व्यक्ति स्वयं को वातावरण के नुसार सन्तुलित कर लेता है तो वह उसका अनुकूलन व्यवहार कहलाता है या समायोजन की श्रेणी में आता है। वातावरण के अनुसार समायोजन निःसन्देह व्यक्तित्व का परिचायक है। किसी भी वातावरण में व्यक्ति कुसमायोजित व्यवहार या अनुकूलन करता है तो उसे समस्यामूलक तथा उसके अनुकूलन या व्यवहार को समस्यामूलक व्यवहार कहा जाता है। समस्यामूलक व्यवहार वातावरण के अनुकूल नहीं होता है। इसका कारण यह है कि कुसमायोजित व्यक्ति अस्थिर बुद्धिवाला, संवेगात्मक रुप से असंतुलित, अनिर्दिष्ट उद्देष्यवाला, घृणा, द्वेष और बदले की भावना वाला होता है। वह असामाजिक, स्वार्थी और सर्वथा दुःखी होता है। साधारण सी बाधा एवं समस्या उत्पन्न होने पर मानसिक संतुलन खो देता है। ऐसे व्यक्ति स्नायु रोगग्रस्त, मानसिक द्वन्द्व एवं कुठाग्रस्त तथा तनावयुक्त होते हैं। आम बोलचाल की भाषा में या यों कहे कि कुसमायोजित बच्चों को ही समस्यामूलक बालक माना जाता है। कुछ बालक ऐसे होते हैं जो न केवल शिक्षकों के लिए बल्कि माता–पिता के लिए समस्या बन जाते हैं। विद्यालयी अनुशासन के विरुद्ध आचरण, आलसपन, चोरी करना, कक्षा से गैरहाजिर, शिक्षकों या अधिकारियों को धमकी देना, घबड़ाहट आदि गुण समस्यामूलक बालकों में ही पाया जाता है।

उद्देष्य एवं परीक्षण उपकरण :– शिक्षा का प्रमुख कार्य एवं उद्देष्य बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगींण विकास करना होता है। सामान्य एवं समस्यामूलक बालकों की शिक्षा व्यवस्था उचित ढ़ंग से किया जा सकें। एक ही कक्षा में सामान्य एवं समस्यामूलक बच्चा अध्ययन करता है।

सामान्य एवं समस्यामूलक बच्चा के अनुसार शिक्षा व्यवस्था अलग–अलग ढ़ंग से किया जा सकें। दोनों तरह के बच्चों का विकास रुचि एवं प्रबन्धन के द्वारा किया जा सकता है। इस प्रकार के बच्चों के शिक्षा अध्ययन के लिए निम्नलिखित परीक्षण उपकरण का उपयोग किया जाता है– सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण–जोषी, समायोजन प्रश्नावली, आइजेंक व्यक्तित्व इन्वेण्ट्री एवं व्यक्तिगत डाटा शीट।

आँकड़ों का विष्लेषण एवं व्याख्या :– वैयक्तिक भिन्नता का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र मानसिक योग्यता और विषेष रुप से बुद्धि है। बुद्धि मापनों के आधार पर व्यक्ति की बौद्धिक योग्यता का पता चलता है। मनोवैज्ञानिकों ने माना है कि व्यक्ति की बौद्धिक योग्यता में मात्रा का अन्तर होता है। कोई तीव्र बुद्धि का है तो कोई मन्द बुद्धि का और कोई सामान्य बुद्धि का । अधिकांश लोगों की या बच्चों की बुद्धि–लब्धि 90 से 109 के बीच होती है, कुछ ही छात्रों की बुद्धि 90 से कम तथा 109 से अधिक होती है। निम्न तालिका से यह और स्पष्ट हो रहा है। बुद्धि–लब्धि के मान तथा उस अर्थ–

140 या इससे अधिक	प्रतिभा
120 से 139 तक	अतिश्रेष्ठ
110 से 119 तक	श्रेष्ठ
90 से 109 तक	सामान्य
80 से 89 तक	मन्द
70 से 79 तक	सीमान्त
60 से 69 तक	मन्द बुद्धि
20 से 59 तक	हीन बुद्धि
20 या इससे कम	जड़ बुद्धि

इस तरह से हम देखते है कि बुद्धि–लब्धि द्वारा हमें व्यक्ति के बौद्धिक स्तर का पता आसानी से चल जाता है। वैयक्तिक–मन्द बुद्धि भिन्नता की यह विषेषता किसी भी मानसिक या शारीरिक शीलगुण के साथ पायी जाती है।

शिक्षा की दृष्टि से यह विषेषता काफी महत्त्वपूर्ण है। इसी कारण शैक्षिक निर्देषन की आवश्यकता होती है। स्टर्न, बर्ट, विने ने बुद्धि को ही समायोजन की क्षमता मानते हैं। इस तरह स्पष्ट है कि बुद्धि एक सामान्य योग्यता है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों को समझता है और उसके अनुसार अपने व्यवहार में यथोचित परिवर्तन करता है। बुद्धि के सहारे ही वह विभिन्न समस्याओं को सुलझा कर व्यावहारिक जीवन में सफलता प्राप्त करता हैं।

एल. बी. बर्च ने अपने अध्ययन में पाया कि बारह साल के 62 प्रतिशत लड़कों तथा ग्यारह साल की 51प्रतिशत लड़कियों में दाँत से नाखून काटने का लक्षण पाया गया। एक दूसरे अध्ययन में इन्होंने देखा कि 90 प्रतिशत बालकों में निरर्थक क्रियाओं को करने की विवषता है। परन्तु वास्तव में देखा जाय तो इस तरह के व्यवहार से बालकों के अभियोजन पर कोई बुरा असर नहीं पड़ता है। इसके साथ ही कुछ दिनों के बाद ऐसे व्यवहार सामान्य व्यवहारों में बदल जाते हैं। इस सन्दर्भ में, जी० डी० कमिंग्स ने भी नरसरी तथा शिषु पाठशाला के दो साल से सात साल के 329 बालकों का अध्ययन किया और देखा कि कायरता, भाषा–दोष, अत्यधिक बेचैनी, घबड़ाहट, झक्खीपन, निर्दयता, झूठ बोलना, ध्यान को अधिक देर केन्द्रित करना, जल्दी–जल्दी पेषाब–पैखाना करना आदि लक्षण लगभग सभी बालकों में थे। 30 प्रतिशत बालकों में दिवास्वप्न, 20 प्रतिशत बालकों में अत्यधिक चिन्ता, 21 प्रतिशत बालकों में अधिक देर तक पेशाब नहीं रोक पाना तथा 18 प्रतिशत बालकों में घबड़ाहट के लक्षण देखे गए। परन्तु आयु वृद्धि के साथ–साथ ये सभी लक्षण दूर होने लगे। पाँच वर्ष से कम आयु वाले बालकों में 87 प्रतिशत और पाँच वर्ष से अधिक आयु वाले बालकों में 56 प्रतिशत सुधार देखा गया। इन बालकों के सुधार के लिए किसी तरह के प्रशिक्षण या मनोवैज्ञानिक उपचार नहीं किया गया।

निष्कर्ष एवं सुझाव :– स्वस्थ्य शरीर में ही स्वस्थ्य मन का वास हीं शिक्षा माना गया है। कोई बालक हो या परिपक्व व्यक्ति शिक्षा अपने मस्तिष्क के संकेत पर ही कार्य करता है। जिनलोगों का मस्तिष्क स्वस्थ नहीं रहता है वे जीवन के विभिन्न परिस्थितियों का सामना सफलता पूर्वक नहीं कर पाते, वे हमेषा किसी–न–किसी तरह की मानसिक उलझन या परेषानी में रहते हैं। उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षण कठिनाईओं, निराशाओं का सामना करना पड़ता है। वे समाज में अपने को समायोजित नहीं कर पाते हैं। समस्याममूलक बालकों के शिक्षा हेतु जो अनुसंधान कार्य हुए है और जिन कारणों का पता चला है उसके आधार पर शिक्षा–शा स्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों ने उनके समुचित शिक्षा हेतु कई तरह के सुझाव एवं उपाय प्रस्तुत किये हैं। सर्वप्रथम, समस्यामूलक बालकों के योग्यता एवं क्षमता के मुताबिक शिक्षा की व्यवस्था करना है। इसके साथ ही उनके रुचि पर भी ध्यान देना जरुरी है। जब किसी बालक को किसी ऐसे विषय की शिक्षा दी जाती है जिसमें उसकी रुचि नहीं होती या जिसे वह पसन्द नहीं करता है तो उस विषय के अध्ययन से वह कतराने लगता है, यद्यपि उस विषय के अनुकूल उसमें प्र्याप्त योग्यता होती है। रूचि के अनुकूल शिक्षा नहीं होने पर बालकों में समस्यात्मक व्यवहार जैसे कक्षा से भागना, स्कूल न जाना, झूठ बोलना, विद्रोह करना आदि गुण विकसित हो जाते हैं। अन्ततः यह बिल्कुल सत्य है कि समस्यात्मक व्यवहार को दूर करने के लिए बालकों की शिक्षा उनकी योग्यता के साथ–साथ रुचि के अनुकूल भी होना चाहिए। इसके लिए प्रत्येक शिक्षण–संस्थानों में एक कुषल एवं प्रषिक्षित मनोवैज्ञानिक की नियुक्ति अनिवार्य रुप से होनी चाहिए। मनोवैज्ञानिक द्वारा बालकों की योग्यता एवं अभिरुचि की जाँच करके शिक्षा देने का निर्देषन तथा जिस बालक में किसी तरह की समस्यात्मक व्यवहार देखा जाय तो उसकी वैसे आदत को दूर करने का उपाय भी करना चाहिए।

शिक्षण संस्थानों में शिक्षकों द्वारा सरस एवं सरल भाषा में अध्यापन–विषय की प्रस्तुती भी अनिवार्य है। बालकों को अपने विषय के प्रति इस तरह शिक्षकों द्वारा प्रेरित किया जाय कि वें पढ़ाई की तरफ अधिक–से–अधिक झुकाव करें। शिक्षकों के अध्यापन की

शैली एवं विधि काफी रोचक तथा प्रेरणात्मक होनी चाहिए। इसके अभाव मे बच्चों में समस्यात्मक व्यवहार जैसे– हाजिरी बोलकर कक्षा से निकल जाना, कक्षा में शरारत करते–करते समय व्ययतीत करने जैसी बाते देखी जाती है। बालकों को समस्यात्मक बनने से रोकने तथा शिक्षा के प्रति प्रेरित करने के लिए खेल, ड्रामा, संगीत, उपयोगी एवं शिक्षाप्रद चलचित्र का प्रबन्ध भी होना चाहिए। इस तरह समस्यात्मक व्यवहार बहुत हद तक शिक्षक, मनोवैज्ञानिक, माता–पिता तथा सामाजिक सलाहकारों एवं अधिकारियों द्वारा रोका जा सकता है।

सन्दर्भ सूची :–

:–

1.आर० पी० सिन्हा और शषि प्रभा (1994) डाइमेन्सन्स ऑफ इण्डिया एडुकेषन हर–आनन्द, दिल्ली।
2.आर० पी० सिन्हा (1997) इन इक्वालिटी इन इण्डियन एडुकेषन, विकास, दिल्ली।
3.बर्नस्टेन, बी० (1960): लॉग्वेज एण्ड सोषल क्लास. ब्रीट, जे० सोषल, साइकोलॉजी. 11,271–76.
4.आधुनिक शिक्षा –मनोविज्ञान– प्रो० मु० सुलेमान मोतीलाल बनारसीदास, पटना।